ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-2*March- 2018
Innovation The Research Concept

वर्तमान समय में भारतीय संविधान की समीक्षा के विचार की समीक्षा

(डॉ0 अम्बेडकर एवं पूर्व राष्ट्रपति आर0 वेंकटरमण के विशेष सन्दर्भ में)

सारांश

वर्तमान समय में प्रायः सभी गैर आरक्षित समूह आरक्षण समाप्त करने के लिए संविधान समीक्षा की बात कर रहें है, जो उनकी अज्ञानता को दर्शाता है कि संविधान समीक्षा के वैकल्पिक आधार पहले ही प्रस्तुत किये गयें है, जिनमें सरकार की कार्यप्रणाली को ध्यान में रखते हुयें विचार प्रस्तुत कियें गयें हैं, न की आरक्षण व्यवस्था के आधार पर। आरक्षण व्यवस्था तो दोहरे निर्वाचन की व्यवस्था को रोकने का एक सशक्त उपाय था और स्वतंत्रता प्राप्ति के समय पाकिस्तान के समान दलितस्थान की स्थापना को रोकने का एक उपाय था और वर्तमान परिस्थिति में आरक्षण व्यवस्था को समाप्त करने के लिये संविधान समीक्षा की बात को उठाकर, दलित एवं पिछडों को दलितस्थान की मांग करने के लिएं मजबूर कर रही है, जो देश के विकास एवं हिन्दूत्व की दृष्टि से अच्छा प्रतीत नहीं होता। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्ही सब बातों को ध्यान में रखतें हुए, संविधान समीक्षा से सम्बंधित पूर्व राष्ट्रपति आर0 वेंकटरमण एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचार प्रस्तुत किये गये है और बताया गया है कि वास्तविक रूप में किन आधारों पर संविधान समीक्षा की बात की जायें।

मुख्य शब्द : संविधान, समीक्षा, आरक्षण, अध्यक्षीय प्रणाली, संसदीय प्रणाली, पूर्व राष्ट्रपति आर0 वेंकटरमण के विचार, डॉ0 अम्बेडकर के विचार, अन्य के विचार।

पीताम्बर दास
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

प्रस्तावना

वर्तमान समय में सत्ता पक्ष द्वारा समर्थित कुछ संगठन आये दिन आरक्षण व्यवस्था को लेकर भारतीय संविधान की समीक्षा की बात उठातें रहते है, जिसके पिछे इन संगठनो का केवल अपना निजी स्वार्थ है और अपनी राजनीति को चमकाना है, परन्तु संविघान समीक्षा की बात इससे पहले भी होती रही है, जिसका कारण आरक्षण व्यवस्था न होकर अन्य कारण है। सही एवं सत्य कारण जनता के समाने लाना वर्तमान समय में अति आवश्यक है, जिसकी चर्चा पहले ही डॉ0 अम्बेडकर ने रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज के खंड 13 में पृ0 सं0 51, 52, 1210,1215–1218 (महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन, बाम्बे, 1994) में तथा पूर्व राष्ट्रपति आर0 वेंकटरमण ने अपने लेख गवर्नमेण्ट : वांटेड, ए नेशनल एक्जीक्यूटिव (आलेख), हिन्दुस्तान टाइम्स, दिनांक : 07.05.1995 में की है, जिनमें बताया गया है कि आजकल यह वाद–विवाद व्यापक रूप में सामने आ रहा है कि भारतीय संविधान में सरकार के स्थायित्व का कोई अचूक एवं उत्तम प्रावधान दिखाई नहीं देता। देश में आये दिन चुनावों के बादल छाये रहते हैं, जिनके कारण सार्वजनिक धन अथवा जनता के धन का अपव्यय होता रहता है। संविधान द्वारा निर्धारित प्रजातंत्र पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया जा रहा है और कहा जाता है कि आधुनिक प्रजातंत्र बहुमत के शासन द्वारा संचालित होता है अर्थात् 51 लोग 49 पर एक के बहुमत से शासन कर सकते हैं। इसी बात को पूर्व राष्ट्रपति आर0 वेंकटरमण ने इस प्रकार कहा है कि इससे सरकार और विरोधी पक्ष में प्रारम्भ से ही टकराव अथवा द्वन्द्व होने लगता है, क्योंकि ऐसे प्रजातंत्र में 49 लोगों को नजरअंदाज करके शासन का संचालन होता है। परिणामस्वरूप देश का एक बड़ा भाग सरकार में सहभागी होने से वंचित हो जाता है और यही कारण है कि यह जनता का भाग शासित होने के लिए समझौता कर लेता है अथवा अप्रिय वाद–विवादों, बहिष्कारों, दोषारोपणों आदि के षडयंत्र में फंसा रहता है। जिसके परिणामस्वरूप प्रजातंत्र में सरकार का स्थायित्व खतरे में पड़ा रहता है और निष्कर्षतः यह कहा जा सकता हे कि जोड़–तोड़ की राजनीति द्वारा

सरकार को गिराने की भूमिका सक्रिय हो जाती है और तो और शासन पक्ष के स्वार्थी नेता भी दल–बदल की नीति अपनाकर सत्ता में विद्यमान रहना चाहते हैं। उपरोक्त कारण के आधार पर ही वर्तमान प्रजातांत्रिक तथा संसदीय सरकार के स्थान पर आर0 वेंकटरमण ने 'राष्ट्रीय सरकार' अथवा 'मजबूत राष्ट्रीय कार्यपालिका' का विकल्प सुझाया, जिसमें देश के सभी प्रमुख विद्वान, विशेषज्ञ, नेता आदि सम्मिलित होकर, देश का प्रशासन संविधान द्वारा निर्धारित अवधि तक चलाएं और प्रधानमंत्री का चुनाव राष्ट्रपति के द्वारा हो और वह लोकसभा में बहुमत के आधार पर पांच वर्ष तक काम करे। लोकसभा पांच वर्ष के पूर्व किसी भी दशा में भंग न होने पाये, का प्रयास किया जाये। मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति करे। प्रधानमंत्री और मंत्रियों की निरन्तरता राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर हो, परन्तु वे लोकसभा के प्रति उत्तरदायी हो। इन सब बातों के अलावा 'राष्ट्रीय सरकार' के सुझाव के पीछे पूर्व–राष्ट्रपति की मंशा यह है कि संसद की पांच वर्ष की अवधि के बीच प्रशासन का स्थायित्व बना रहे, देश के प्रशासन में सभी राजनीतिक दलों का सहयोग तथा सहभागिता हो और सरकार एवं विपक्ष के बीच होने वाली द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति का अन्त हो। यह विकल्प 'दलगत सरकार' के स्थान पर 'राष्ट्रीय सरकार' का है, जिसमें देश के सभी योग्यतम व्यक्ति सम्मिलित हों (यहां योग्यतम का मानदण्ड गरीब एवं शोषित वर्ग का उच्च शिक्षित व्यक्ति हो)। परिणामस्वरूप न केवल स्थायी सरकार बनेगी, बल्कि वह अच्छी सरकार भी रहेगी, जैसा कि पूर्व–राष्ट्रपति ने परिलक्षित किया है।[1]

साहित्यावलोकन

उपरोक्त शोध पत्र से सम्बन्धित विचार समय–समय पर विभिन्न समाचार पत्रों एवं विभिन्न संगठनों द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते है, परन्तु इस पत्र से सम्बन्धित विचार हमें सर्वप्रथम संविधान स्वीकृति के समय संविधान सभा की बैठकों में देखने को मिलते हैं। संविधान लागू होने के बाद सरकार द्वारा विभिन्न संवैधानिक संशोधनों की प्रक्रियांओं में भी संविधान समीक्षा के विचार देखने को मिलते है, परन्तु प्रस्तुत शोध पत्र में संविधान समीक्षा से संबंधित विस्तृत रूप से विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो अन्यत्र मिलना कठिन है। इस शोध पत्र को लिखने में आर0 वेंकटरमण, 'गवर्नमेण्ट : वांटेड, ए नेशनल एक्जीक्यूटिव (आलेख), द हिन्दूस्तान टाइम्स (अंग्रेजी), दिनांक–07.05.1995 तथा डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर –रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड 13 (महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन, बाम्बे, 1994) एवं डॉ0 डी0 आर0 जाटव : डॉ0 अम्बेडकर संविधान के मुख्य निर्माता, वर्ष–2015, समता साहित्य सदन द्वारा प्रकाशित पुस्तको व लेखो की सहायता ली गयी है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वर्तमान समय में विभिन्न संगठनों द्वारा, दलित एवं पिछडें वर्गो को दिये जा रहे संविधान द्वारा अधिकारो को समाप्त करने अथवा कम करने की बात को लेकर संविधान समीक्षा की उठाई जा रही बात कहां तक सही एवं प्रासंगिक है आदि की समीक्षा करके यह बताना है कि जिन दलित एवं पिछड़ें वर्गो को कई हजार वर्षो तक सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया और संविधान ने इन वर्गो को यदि समाज की मुख्य धारा में मिलने के कुछ अधिकार दे दिये तो संविधान के इस प्रयास की आलोचना करने के स्थान पर मानवीय एवं देशहित की दृष्टि से प्रशंसा करनी चाहिए और सच्चाई यह भी है कि स्वतंत्रता प्राप्ति एवं संविधान लागू होने के इतने वर्षो बाद भी अभी तक किसी भी सरकार के ने पूर्ण रूप से आरक्षित पदों को भरने का पूर्ण प्रयास नही किया है। जब संविधान में पहले ही अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन की व्यवस्था कर दी गयी है, तो फिर संविधान समीक्षा की बात करना देशहित में नहीं है।

पूर्वराष्ट्रपति आर0 वेंकटरमण के विचार

आर0 वेंकटरमण के इन सुझावों की समीक्षा करने के पूर्व, यह बता देना भी आवश्यक होगा कि उन्होंने भारत की 'ग्राम पंचायत व्यवस्था' में राष्ट्रीय सरकार की रूपरेखा को ढूंढ़ निकाला है। उनके अनुसार, प्राचीन शासन पद्धति सहभागिता पर आधारित थी और पंचायतों का प्रशासन बहुमत द्वारा नहीं चलता था। ग्राम सभाओं द्वारा ही पंचों का चुनाव उनकी ईमानदारी, निष्ठा, निष्पक्षता और अच्छी प्रतिष्ठा के आधार पर होता था क्योंकि किसी निर्णय तक पहुंचने में पंच लोग सहयोग एवं सहमति की पद्धति अपनाते थे ताकि अल्पमत का अलगाव संभव न हो सके। शासकों की परिषदों में साधु–सन्त, पुरोहित तथा विद्वान हुआ करते थे। वे सब परस्पर मिल–जुलकर निर्णय लिया करते थे। अतः वेंकटरमण के विचार से, प्राचीन भारतीय परम्परा में पंचायती प्रशासन एक ठोस आधार प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति पंचायत प्रशासन के पक्ष में सदैव रही है, न की दलगत प्रशासन के पक्ष में, इसका मूल कारण यह है कि पंचायती न्याय द्वन्द्व तथा विरोध पर आधारित न होकर, सहयोग और सहमति पर आश्रित था। इस प्रकार देश के प्रशासन में 'टकराव की राजनीति' से बचा जा सकता है।[2] इसी प्रकार कुछ पुराने नेता जैसे वसंत साठे तथा शिवराज पाटिल आदि ने संसदीय प्रणाली के स्थान पर 'अध्यक्षीय प्रणाली' आनाने का सुझाव दिया। इस सुझाव के पीछे भी 'स्थायित्व' का प्रश्न निहित है। इसके लिए संविधान में भारी परिवर्तन करना पड़ेगा, यह एक प्रकार से उसके मूल ढांचे में संशोधन की स्थिति होगी। कुछ कट्टरपंथी नेता, साधु–सन्त भी संविधान को पूर्णतः बदलने की बात करते हैं, वे वर्तमान देश एवं समाज के धर्म–निरपेक्ष स्वरूप से सहमत नहीं है। संभवतः वे राष्ट्र को एक धर्माधारित राष्ट्र में बदलना चाहते हैं ताकि प्राचीन भारतीय शास्त्रों में वर्णित शासन पद्धति, विधि–विधान लागू किया जा सके। इसी प्रकार गांधीवादी विद्वानों की भी युक्ति है कि संविधान को 'पंचायती राज' का एक मॉडल बनाया जाए। गांधी जी भी देश में 'रामराज्य' के समर्थक थे ताकि भारतीय संस्कृति की छाप हमारी विधि–व्यवस्था पर बनी रहे। वे तो राष्ट्रीय ध्वज में चर्खा को चिन्हित करवाने के पक्ष में थे। इस प्रकार देश के कुछ असंतुष्ट तत्त्वों ने उस संविधान को बदलने का अभियान चला रखा है, जो वास्तव में मानववादी सामाजिक सिद्धान्त का एक अद्भुत

मिश्रण है, जो सभी स्थितियों के लिए सक्षम और समर्थ है।

डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के विचार

संविधान समीक्षा के सन्दर्भ में यदि भारतीय संविधान प्रमुख एवं संविधान मर्मज्ञ बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाये तो उन्होंने स्वयं संविधान सभा में कहा था कि देश के कट्टरपंथी तत्त्वों, गांधीवादी विचारको तथा समाजवादियों एवं साम्यवादियों को नया भारतीय संविधान पसंद नहीं था, क्योंकि उसमें रामराज्य की रूपरेखा का अभाव था और गांधीवादी विचारधारा की उपेक्षा की गई थी, आर्थिक ढांचे का समाजवादी स्वरूप निर्धारित नहीं था और साम्यवादी रूसी मॉडल की संविधान में छाप नहीं थी। डॉ0 अम्बेडकर ने इन सब बातों का जवाब दिया था, जैसा कि पूर्व में सविस्तार विश्लेषित किया जा चुका है। उन्होंने कहा था कि भारत का नया संविधान देश के इतिहास, राजनीति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक एवं राजनीतिक दशाओं और आदमी की वर्तमान आवश्यकताओं की दृष्टि से निर्मित होता है। सभी देशों का अपना–अपना इतिहास है, उनकी अपनी–अपनी समस्याएं है और उनकी आकांक्षाएं भी भिन्न–भिन्न होती है। डॉ0 अम्बेडकर ने स्पष्टतः माना कि भारतीय संविधान संसार के सभी संविधानों की गहरी समीक्षा के पश्चात् निश्चित किया गया था। वह भारतीय परम्परा के अनुरूप 'गणतांत्रिक व्यवस्था' स्थापित करता है, सभी धर्मों की समानता की पुष्टि करता है और सभी नागरिकों की किसी न किसी रूप में सहमति एवं सहभागिता को अवसर प्रदान करता है। परन्तु वर्तमान समय में सरकार के स्थायित्व की बात केवल ऐसे नेता करते हैं जिन्होने विगत कई दशकों से सत्ता का भोग किया है, अपार धन–सम्पत्ति एकत्रित की है, अपने घर–परिवार तथा नाते–रिश्तेदारों को सभी तरह से समाज में प्रतिष्ठत किया है, उन्होंने जनता के सार्वजनिक संसाधनों का दुरूपयोग किया है, अपनी पार्टी के समर्थकों एवं पूंजीपतियों को सदैव अनुचित लाभ पहुंचाए हैं और विभिन्न घोटालों में फंसे सांसदों, सदस्यों तथा मंत्रियों को कानून के विरूद्ध संरक्षण दिया है। इन स्वार्थी नेताओं को सशक्त विपक्ष का सामना नहीं करना पड़ा, क्योंकि अभी तक निष्पक्ष एवं संगठित विपक्ष पूर्णतः स्थापित नहीं हो पाया है। उधर जनता भी सजग नहीं रही। अब जब सशक्त विपक्ष विकसित होने लगा है और जनता ने भ्रष्ट राजनीति को नकारा है, तब ये स्वार्थी लोग अल्पमत में आने लगे हैं। अब इन्हें भय है कि कहीं उनकी कुर्सियां न छिन जाएं। वे त्रिशंकु संसद के भय से आतंकित होकर अध्यक्षीय प्रणाली, राष्ट्रीय सरकार अथवा स्थायित्व की बात करते हैं। क्यों वे उस उत्तरदायित्व की बात भूल जाते हैं, जिसकी ओर डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा का ध्यानाकर्षण करते हुए कहा था कि,'' सरकार की दोनों ही व्यवस्थाएं अर्थात् संसदीय तथा अध्यक्षीय वास्तव में प्रजातांत्रित है और दोनों के बीच चुनाव करना बहुत आसान नहीं है। किसी प्रजातांत्रिक कार्यपालिका को दो शर्तों की संतुष्टि करनी चाहिए। प्रथमतः उसे एक स्थायी कार्यपालिका होना चाहिए और द्वितीय, उसे एक उत्तरदायी कार्यपालिका होना चाहिए। दुर्भाग्यवश ऐसी किसी व्यवस्था का निर्धारण संभव नहीं हुआ है, जो आपको अधिक स्थायित्व किन्तु कम उत्तरदायित्व प्रदान करे अथवा आप उस व्यवस्था को स्वीकार कर सकते हैं, जो आपको अधिक उत्तरदायित्व किन्तु कम स्थायित्व प्रदान करे। अमेरिकन तथा स्विस व्यवस्थाएं अधिक स्थायित्व किन्तु कम उत्तरदायित्व प्रदान करती हैं। इसके विपरीत ब्रिटिश व्यवस्था आपको अधिक उत्तरदायित्व किन्तु कम स्थायित्व प्रदान करती है। इसका कारण स्पष्ट है। अमेरिकन कार्यपालिका एक गैर–संसदीय कार्यपालिका है, जिसका अर्थ है कि अपने अस्तित्व के लिए कांग्रेस बहुमत पर आश्रित नहीं है, जबकि ब्रिटिश व्यवस्था एक संसदीय कार्यपालिका है, जिसका अर्थ है कि वह संसद में बहुमत पर आश्रित है।''[3]

अन्य देशों के विचार

ऐसी स्थिति में डॉ0 अम्बेडकर ने बताया है कि अमेरिकी कार्यपालिका को कांग्रेस अपदस्थ नहीं कर सकती। उसमें स्थायित्व तो है, किन्तु उत्तदायित्व की कमी है, क्योंकि राष्ट्रपति को अनेक ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह अपने ढंग से निर्णय ले सकता है। उधर ब्रिटिश कार्यपालिका संसद में बहुमत पर आश्रित होने के कारण, अधिक उत्तरदायी है, क्योंकि उसे संसद में अपने कार्यों के लिए जवाब देना होता है, जबकि अमेरिकी राष्ट्रपति को केवल चार वर्ष के पश्चात् ही जनता के समक्ष जाना पड़ता है। अमेरिकन व्यवस्था में उत्तरदायित्व का मूल्यांकन निश्चित अवधि के बाद ही होता है, जबकि ब्रिटिश कार्यपालिका के कार्यों का मूल्यांकन संसद में आये दिन होता है और एक निश्चित अवधि के पश्चात् भी होता है। संसद में अधिवेशनों के दौरान प्रश्नों, वाद–विवादों, प्रस्तावों आदि के माध्यम से सरकार के कार्यों का जो मूल्यांकन होता है, उसमें स्थायित्व की बजाय उत्तदायित्व को अधिक महत्व दिया जाता है। इसी को दृष्टि में रखते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने कहा था कि,'' उत्तरदायित्व का प्रतिदिन मूल्यांकन, जो अमेरिकी व्यवस्था में उपलब्ध नहीं है, के बारे में यह महसूस किया जाता है कि वह सावधि मूल्यांकन से कहीं अधिक प्रभावी होता है और भारत जैसे देश में वह कहीं अधिक आवश्यक है। प्रारूप संविधान ने कार्यपालिका की संसदीय व्यवस्था की अनुशंसा करने में, अधिक स्थायित्व की बजाय अधिक उत्तरदायित्व को प्राथमिकता दी है।''[4]

इस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर ने, अपने अनेक विद्वान सदस्यों के साथ, स्थायित्व की तुलना में उत्तरदायित्व को सर्वाधिक महत्त्व दिया। भारत के लोग अधिकतर निर्धन, निरक्षर, अशिक्षित, पददलित, कमजोर, पिछडे, शोषित तथा उत्पीड़ित है, जिन्हें समृद्ध एवं मुक्त करने की आवश्यकता है। यहां करोड़ों स्त्री–पुरूष बंधुआ मजदूर हैं और करोड़ों नर–नारी अब भी वंचित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। छुआछूत तथा जाति–संघर्ष ने सामाजिक स्थिति को डांवाडोल बना रखा है। गत चार दशकों से सत्ता में स्थायी रूप से काबिज सम्मानित नेताओं ने इन लोगों के प्रति क्यों उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं किया ? क्यों उन्होंने भ्रष्ट तथा बेईमानी पर आधारित शासन व्यवस्था को पोषित किया है? वे स्वयं निरूत्तरदायी रहे और अब संसदीय व्यवस्था से अपने मोहभंग का

प्रदर्शन करते हैं। वेंकटरमण जैसे अनेक नेताओं ने जमकर सत्ता का भोग तो किया, परन्तु जनता के प्रति अपने न्याय–संगत दायित्वों का निर्वाह नहीं किया। अब जब उन्हें लगता है कि उनकी सत्ता अपदस्थ होने की स्थिति में है तो वे स्थायित्व की बातें करते हैं, उत्तरदायित्व की नहीं, जबकि कुछ मंत्री एवं सत्ताधारी दिग्गज आर्थिक घोटालों में लिप्त हैं और उन पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं हुई है। वर्तमान सरकार में तो सरेआम बड़े–बड़े घोटाले हो रहे है और सरकार की चुप्पि एक सोचनीय बात है। मान भी ले कि अध्यक्षीय प्रणाली अथवा राष्ट्रीय कार्यपालिका स्थापित भी हो जाए, परन्तु पुनः भ्रष्ट तथा घोटालेबाज नेता सत्ता में काबिज हो जाएं तो क्या गारण्टी है कि वे स्वच्छ एवं कुशल प्रशासन दे पायेंगे ? क्या वे भाई–भतीजावाद, जातिवाद, विकास की राजनीति के स्थान पर वोट की राजनीति, क्षेत्रीयवाद, भाषावाद, भ्रष्टता आदि का वातावरण पैदा नहीं करेंगे ?

विगत दशको के विचार

यदि हम विगत चार दशकों की अवधि को देखे तो लगता है कि लगातार एक ही दल की केन्द्रीय सरकार के स्थायित्व ने संसदीय प्रणाली के स्थान पर प्रधानमंत्री प्रणाली और एक ही परिवार के लगातार प्रधनमंत्री बनने से राजशाही प्रणाली स्थापित हो गई प्रतीत होती है। परिणामस्वरूप प्रधानमंत्री न केवल सभी तरह से शक्तिशाली है, अपितु अपने दल में तानाशाही का प्रतीक बन चुका है। सरकार एव दल दोनों ही जगह समस्त सत्ता और औचित्य प्रधानमंत्री के ही हाथों में केन्द्रित है। सभी प्रकार की सत्ता का एकमात्र केन्द्र प्रधानमंत्री बन गया है, जबकि उसके मंत्रीगण और पार्टी के शीर्ष नेतागण उसके चापलूस बन जाते है। इस चापलूसी की राजनीति ने ही हमारी शासन व्यवस्था को दायित्वहीन बना दिया। फलतः सम्बन्धित लोग भ्रष्टता और धन–सम्पत्ति को बटोरने में लिप्त हो जाते है। ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया ऐसे देश है जहां सांवैधानिक नैतिकता की अनुपालना की जाती है। प्रजातांत्रिक दल सही ढंग से काम करते रहें। ब्रिटिश वयवस्था में सत्ता का दुरूपयोग नहीं होता, वहां औपचारिक रूप से सरकार और विपक्ष दोनों ही 'हर मैजेस्टी' के अंग होते हैं, परन्तु वहां के संसदीय प्रजातंत्र पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। दोनों ही अपनी–अपनी जिम्मेदारियां निभाते है। क्या हमारी संसदीय व्यवस्था में ऐसा नहीं हो सकता ? सरकार और विपक्ष में टकराव क्यों होता है ? इसलिए कि वे सांविधानिक नैतिकता, विधिसम्मत पद्धति, विधि के शासन आदि का अनुसरण नहीं करते, जिनकी प्रभावोत्पादकता पर पहले ही डॉ0 अम्बेडकर ने बल दिय था।

यदि पंचायती राज व्यवस्था की बात की जाये तो डॉ0 अम्बेडकर इसके पक्ष में नहीं थे, क्योंकि भारतीय गांव जैसा कि उन्हें देखने को मिला अंधकार, अज्ञान, निरक्षरता, अशिक्षा, सामन्ती भावना, जातिवाद आदि के गढ़ हैं, जहां आपसी जातिगत द्वेष तथा ऊंच–नीच की भावनाएं व्याप्त हैं। ऐसी स्थिति में, डॉ0 अम्बेडकर ने सोचा था कि भारत के गांव को यदि समाज की इकाई मान लिया जाए तो संविधान में निहित 'एक व्यक्ति एक वोट' और 'एक व्यक्ति एक मूल्य' के सिद्धान्त का दमन हो जायेगा। अतः उन्होंने समाज में परिवार अथवा गांव के स्थान पर व्यक्ति को ही इकाई स्वकार करवाया ताकि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरिमा एवं प्रतिष्ठा बनी रहे। फिर भी डॉ0 अम्बेडकर ने नीति–निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत (अनुच्छेद 40 में), ग्राम पंचायतों के गठन का प्रावधान करवाया और सरकार ने एक संविधान संशोधन के द्वारा समूचे भारत में पंचायती व्यवस्था स्थापित कर दी है। इसी व्यवस्था के द्वारा सभी प्रदेशों में चुनाव भी होते है। इस व्यवस्था में छोटे–बड़े लोगों और महिलाओं की स्वायत्त शासन में भागीदारी अवश्य बढ़ी है, किन्तु जातिगत भेदभाव अभी भी विद्यमान है जो समतावादी सहमति एवं सहभागिता के प्रतिकूल है। डॉ0 अम्बेडकर ने कहा था कि जब तक हम जातिवाद के महल को नष्ट नहीं करेंगे, तब तक वास्तविक प्रजातंत्र स्थापित नहीं हो पायेंगा, क्योंकि जातियां न केवल 'राष्ट्र–विरोधी' हैं, बल्कि 'समाज–विरोधी' भी हैं, वे अलगाव और कटुता पैदा करती हैं, जिसकी वजह से समता, स्वतंत्रता, न्याय तथ बन्धुत्व पर आधारित सम्बन्धों की अवहेलना होती है।

वर्तमान समय में संविधान समीक्षा के विचार की दृष्टि से यह कहना प्रासंगिक होगा कि प्रणाली बदलने वाले एवं संविधान समीक्षा की बात करने वाले लोगों ने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि यदि संविधान अथवा संसदीय सरकार की व्यवस्था प्रभावी सिद्ध नहीं हुई तो दोष उसको चलाने वालों में भी हो सकते हैं। यह बात भी सही है कि किसी भी व्यवस्था के दोष बतलाना आसान है, परन्तु उसके संचालक अपने दोषों जैसे भ्रष्ट प्रवृत्ति, निरूत्तरदायी व्यवहार, पक्षपातपूर्ण निर्णय, धन–सम्पत्ति की तृष्णा आदि को क्यों नहीं स्वरकार करते। उनके निहित–स्वार्थों ने ही संसदीय प्रणाली और प्रजातंत्र को कमजोर किया है, न कि स्वतः व्यवस्था ने। संविधान सभा में 25 नवम्बर, 1949 के दिन डॉ0 अम्बेडकर ने जिन शब्दों को व्यक्त किया उनसे लगता है कि उन्हें भविष्य की घटनाओं का पूर्वाभास था। उन्होंने एक चेतावनी देते हुए कहा था कि,"संविधान कितना ही बेहतर हो, यदि उस पर अमल करने वाले निकम्मे हो तो बुरा साबित हो सकता है और यदि अमल करने वाले अच्छे हैं तो बुरा संविधान भी अच्छा साबित हो सकता है। संविधान का अमल पूर्णतः इस बात पर आश्रित नहीं होता कि उसका स्वरूप कैसा है। वह तो राज्य के मुख्य–मुख्य अंग की कार्य–कुशलता देशवासियों और उनके द्वारा गठित राजनीतिक की संपूर्ति होती है। देशवासी और उनकी बनाई पार्टियां कैसी भूमिका अदा करेंगी, कौन बता सकता है ? जनता और पार्टियों द्वारा निभाये जाने बिना संविधान पर निर्णय देना निरर्थक होगा और वर्तमान समय में संविधान की समीक्षा की बात करने वालो को संविधान समीक्षा पर ध्यान न देकर अपने चरित्र एवं मानसिकता के सुधार पर अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि यदि उनकी मानसिकता एवं चरित्र सुधर जायेंगा तो संविधान समीक्षा की उन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं होगी क्योंकि कोई भी नियम एवं कानून जनता के सार्वभौमिक कल्याण एवं सामान्य इच्छा की दृष्टि से ही बनाये जाते है, न की किसी स्वार्थ की भावना से।

नागरिको में संविधान के प्रति जागरूकता

वर्तमान समय में स्थिति यह है कि भारत के नागरिकों में राजनीतिक सजगता आई है, वे अपने अधिकार पहचानने लगे हैं, मताधिकार का उन्हें महत्व समझ में आने लगा है कि वे निकम्मे प्रतिनिधियों को हरा सकते हैं और सरकारें भी बदल सकते हैं। देशवासियों, विशेषकर आम लोगों ने, प्रजातंत्र के मूल्य को जाना है और पंचायती राज के चुनावों द्वारा अपनी भागीदारी को स्थापित किया है। परन्तु देश के विभिन्न राजनीतिक दल, जिनमें स्वार्थी एवं संकीर्ण दिमाग वाले नेता लोग सम्मिलित हैं, वे सभी उचित दिशा–निर्देशन नहीं करते। वे अपने क्षुद्र स्वार्थों के कारण समाज के विभिन्न वर्गों के बीच कटुता तथा कांटे पैदा करते है, हिन्दू–मुस्लिम समुदायों के बीच झगड़े करवाते है, वे भाषावाद तथा क्षेत्रीयवाद का प्रचार करते है, दल–बदल की नीतियों को बढ़ावा देते हैं, चुनावों में अनाप–शनाप धन लुटाकर जीतने के बाद सभी प्रकार के भ्रष्टाचार तथा घोटाले करते है, पार्टियों के बड़े–बड़े नेता संविधान की व्यवस्था के विरूद्ध व्यवहार करते है और फिर आशा करते हैं कि जनता उन्हें ही बार–बार चुन कर भेजती रहे। यदि 'त्रिशंकु सरकार' केन्द्र में आती है, जैसा कि कई प्रदेशों हुआ है, तो इसमें भयभीत होने की बात क्यों की जाती है। संसदीय प्रणाली में यह भी एक प्रयोग होगा। जनता अब आंख–मींचकर मताधिकार का प्रयोग नहीं करेगी। वह तो अच्छे तथा ईमानदार प्रतिनिधियों को चुनकर संसद में भेजेगी, भले ही स्थायित्व की कमी रहे, किन्तु उत्तदायित्व की भावना में तो निश्चय ही वृद्धि होगी। डॉ0 अम्बेडकर ने राजनीतिक दलों की नीतियों और व्यवहारों के प्रति जो आशंका व्यक्त की थी, उसके संदर्भ में, अपेक्षित सुधारों की आवश्यकता है, न कि व्यवस्था को बदलने की।

यदि संविधान समीक्षा अथवा संविधान विकल्प के सन्दर्भ में आर0 वेंकटरमण की बात की जाये तो उनका कहना है कि 'राष्ट्रीय सरकार' का गठन 'पार्टी सरकार' का एक विकल्प होगा। उनकी मान्यता है कि किसी सरकार में दिग्गज, विशेषज्ञ, विद्वान नेता क्यों सम्मिलित न किये जाएं और क्यों एक ही राजनीतिक दल के ऐसे लोग सरकार का गठन करें जो महत्वहीन हैं और जो शासन चलाने के योग्य नहीं है। इस प्रकार निर्मित सरकार, जैसा कि वेंकटरमण का विश्वास है, न केवल स्थायी होगी, अपितु अच्छी तथा कुशल सरकार भी होगी। इसमें टकराव की राजनीति न होकर, सहयोगात्मक सरकार होगी और वर्तमान संविधान की बजाय एक प्रजातांत्रिक सरकार होगी। साथ में ही वेंकटरमण यह भी कहते हैं कि उनकी योजना वर्तमान संविधान को पूर्णतः समाप्त करने की नहीं है, क्योंकि वह अब भी 'अच्छा संविधान' है, परन्तु उसमें देश के सभी वर्गों के लोगों की शासन में स्वीकार्यता और स्थायित्व की सुरक्षा नहीं है। ऊधर मजहबी कट्टरपंथी संस्थाए संविधान को इसलिए बदलना चाहती है कि उसमें आरक्षण व्यावस्था पर अधिक ध्यान दिया गया है और मजहब, स्मृति एवं संस्कृति की छाप नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव में संविधान समीक्षा अथवा परिवर्तन के पीछे ऐसे तत्त्वों की मंशा शुभ और सर्वहितकारी है ? क्या जिन्हें सदियों से दबाया गया और उनको समाज के सभी अधिकारों से कई हजार वर्षो तक वंचित रखा गया, उन्हें कुछ अधिकार देने और समाज की मुख्य धारा में मिलाने के प्रयास ने असामाजिक एवं अकल्याणकारी कार्य किया है ? मानवीय दृष्टि से संविधान के इस प्रयास की आलोचना के स्थान पर प्रशंसा करनी चाहिये।

संविधान सभा के विचार

इसी बात की संभावना व्यक्त करते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में पहले ही कहा था कि समाज के कुछ तत्त्व संविधान को क्यों पसन्द नहीं करते, इसलिए कि संविधान सभी की महत्तवकांक्षाओं की संपूर्ति करने में उस ढंग से निर्मित नहीं हुआ, जिस रूप में वे चाहते थे। साम्यवादी चाहते थे कि उन्हें सांवैधानिक विधि के द्वारा 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही' स्थापित करने का अवसर मिले, जबकि समाजवादियों ने चाहा था कि संविधान में ही 'समाज के समाजवादी ढांचे' को निर्धारित की दिया जाए ताकि उन्हें हर उद्योग तथा कृषि क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण का मौका मिले। उधर कुछ कांग्रेसी तथा गांधीवादी चाहते थे कि संविधान में गांधी–दर्शन की विचारधारा संचारित हो। अब कट्टरपंथी तत्त्व संविधान को इसलिए बदलना चाहते हैं कि वह धर्म–निरपेक्ष है। उसमें हिन्दूशास्त्रों का विधि–विधान, जैसा की मनु–स्मृति में है, सम्मिलित नहीं है। ऐसी स्थिति में श्री आर0 वेंकटरमण की 'राष्ट्रीय सरकार' की योजना केवल एक कल्पित विचार है। वह एकदम से व्यावहारिक बनने में सक्षम तथा समर्थ नहीं होगी। जहां बड़े–बड़े नेता प्रधानमंत्री बनने की लालसा संजोये रहकर समय आने पर अपने ही राजनीतिक दल को छिन्न–भिन्न कर देते हैं, वहां राष्ट्रीय सरकार की योजना मात्र एक दिवास्वप्न ही होगी।

बुद्धिजीवियों का मत

यह सोलह आने सत्य है कि पहले और आज देश के अधिकांश बुद्धिजीवी और आम जनता संसदीय प्रणाली के ही पक्ष में हैं क्योंकि इसमें जवाबदेही अधिक है, भले ही स्थायित्व की कमी है, परन्तु वह भी बेईमान नेताओं और संकीर्ण राजनीतिक दलों की नीतियों के कारण। कुछ नेता ऐसे है जो केवल एक मुद्दे पर संयुक्त सरकार को गिरा सकते है तो फिर स्थायित्व कहां से आयेगा। कुछ दलो की संयुक्त सरकार केवल क्षुद्र स्वार्थों के कारण गिरी थी, न की संविधान व्यवस्था के कारण। एक ओर सामाजिक न्याय के समर्थक और दूसरी ओर धर्म–निरपेक्षता के आलोचकों का तालमेल यदि संयुक्त सरकार में संभव नहीं हो सका तो 'राष्ट्रीय सरकार' में विरोधी विचारधाराओं के लोग किस प्रकार देश का प्रशासन मिलकर चला सकते हैं ? कुछ घोटाले ऐसे थे जिसमें समूचे मंत्रिमण्डल की जिम्मेदारी थी, परन्तु प्रधानमंत्री ने किसी के उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं किया और वित्त–मंत्री भी साफ बच निकले। मुख्य बिन्दु यह है कि सांवैधानिक दृष्टि से यदि मंत्रीमंडल या कोई मंत्री ईमानदारी का परिचय नहीं देता और सत्ता से चिपके रहने की नीयत से झूठ बोलता है तो फिर किसी प्रणाली में घटित ऐसे मामले सरकारें हिलाने में सफल होंगे। वस्तुतः शासन प्रणाली कोई भी हो, अमेरिका अध्यक्षीय प्रणाली या ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था आदि में दोष अवश्य

मिलेंगे। सभी प्रणालियों में अच्छाई तथा बुराई है। जैसा कि डॉ0 अम्बेडकर ने पहले ही कहा था कि,'' संसदीय प्रजातंत्र का सिद्धान्त राजनीतिक प्रजातंत्र का उत्तम रूप है और यदि संविधान असफल रहता है तो दोष व्यवस्था का नहीं, बल्कि यह कहना पड़ेगा कि ''आदमी ही दुष्ट है।''

महत्त्वपूर्ण चेतावनियां

बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर ने भारतीय समाज की स्थिति को देखते हुए संविधान की स्वीकृति के समय कुछ चेतावनियां दी थीं जो आज भी सार्थक तथा प्रासंगिक हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है :–

1. डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार पहली बात जो भारतीयों को करनी है, वह है सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सांवैधानिक तरीकों का उपयोग करना है, क्रान्तिकारी तथा आतंकवादी तरीकों का नहीं।
2. उनकी दृष्टि से दूसरी बात जो सभी नागरिकों को ध्यान में रखनी है, वह है कि वे किसी भी महान् व्यक्ति के कदमों में अपनी स्वतंत्रताओं तथा अधिकारों को अर्पित न करें, न ही उसे इतने विशेषाधिकार दें कि वह स्थापित प्रजातांत्रिक संस्थाओं या अंगों को पंगु या समाप्त कर दें।
3. डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा है कि किसी भी महान् व्यक्ति के प्रति भक्ति या उसकी पूजा (Hero Worship) प्रजातंत्र के लिए एक खतरा है, क्योंकि वह चाटुकारिता को बढ़ावा देती है। धर्म में भक्ति मोक्ष का साधन हो सकती है, परन्तु राजनीति में भक्ति गिरावट तथा जिल्लत का ही मार्ग है जो अन्ततः अधिनायकवाद या तानाशाही की ओर ले जाता है।
4. उनकी दृष्टि में एक और महत्वपूर्ण बात जो देशवासियों को करनी है, वह है कि उन्हें राजनीतिक प्रजातंत्र को सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए क्योंकि राजनीतिक प्रजातंत्र तभी टिकाऊ होगा जब उसकी जड़ें सामाजिक प्रजातंत्र पर आधारित हों, सामाजिक प्रजातंत्र एक मानववादी बंधुत्व भावना है, जिसे भलीभांति सहजीवन में बदलना है।
5. डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतवासियों को वास्तविक रूप में 'राष्ट्र' बनना है, जितनी शीघ्र हम इस तथ्य की अनुभूति कर लें कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थ में हम एक राष्ट्र नहीं हैं, उतना ही शीघ्र हम राष्ट्र बनने की अनिवार्यता महसूस करके,राष्ट्रीय एकता तथा सुदृढ़ता को प्राप्त करने में सफल होंगे।
6. अन्त में उनका विचार है कि यदि हम उस संविधान को सुरक्षित रखना चाहते हैं जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातृत्व जैसे मानव मूल्य सन्निहित हैं और जिसमें जनता की, जनता के लिए एवं जनता द्वारा सरकार के प्रजातांत्रिक सिद्धान्त का अनुमोदन है तो हमें उन बुराइयों की पहचान तथा समाप्ति में आलस्य नहीं करना चाहिए जो हमारे मार्ग में अवरोधक बनती हैं।[6]

सहभागी लोकतंत्र का विचार

उपरोक्त के अलावा वर्तमान समय में सहभागी लोकतंत्र का विचार भी समाने आ रहा है, जिसको मैनें दिनांक 11 मार्च, 2018 के दैनिक जागरण, वाराणसी संस्करण में पढ़ा, जिसमें श्री आशुतोष मिश्रा (सलाहाकार, पार्टनरशिप फॉर ट्रांसपेरेंसी फंड, वाशिंगटन), डॉ0 अनिल प्रकाश जोशी (संस्थापक, हिमालयन एनवायरमेंटल स्टडीस एंड कंजर्वेशन ऑर्गनाइजेशन) तथा मृदुला टंडन (अध्यक्ष, साक्षी संस्था) जैसे चिन्तकों का कहना है कि सहभागी लोकतंत्र देश के हर नागरिक को यह अधिकार देता है कि वह शासन के अहम फैसलों में अपना पक्ष रख सके। इसका एक बड़ा उद्देश्य यह भी है कि अधिक से अधिक लोगों को इस सहभागिता का मौका मिल सके। सहभागिता के इस विचार को गुड गवर्नेंस अर्थात् सुशासन से जोड़कर देखा जाता है। सहभागी लोकतंत्र से शासन को अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी और प्रभावी बनाया जा सकता है। बजट बनाने में सहभागिता,सिटीजन काउंसिल, पब्लिक कंसल्टेशन, सहभागी नियोजन जैसी प्रथाओ के द्वारा दुनिया के कई देश अपने नागरिकों को लोकतंत्र में सहभागी बनने का अवसर देते हैं। जिसमें लोगों को अपनी गली, माहल्लों, कस्बे से जुड़े मुद्दों पर निर्णय लेने की जिम्मेदारी लेनी होती है। जब लोग अपने क्षेत्र के प्रति जिम्मेदार हो जाएंगे तो देश अपने आप विकास करेगा, परन्तु यहां पर मेरा यह कहना है कि यदि सहभागी लोकतंत्र की बात की जा रही है तो सांसद एवं विधायक का भी यह कर्त्तव्य होना चाहिएं कि वह अपने क्षेत्र के विकास हेतु जो निधि अथवा अनुदान सरकार द्वारा प्राप्त करता है, तो उसको कहां पर खर्च करना है, यह बात जनता का वह प्रतिनिधि जनता से पूछे और फिर उस पर ही खर्च करे और जनता का बहुमत जानने के लिए वह मोबाईल, मिडिया जैसे आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर सकता है। इसका परिणाम यह होगा कि जनता की निधि सही स्थान पर खर्च होगी और जनता का अपने सांसद और विधायक के प्रति विश्वास भी बना रहेंगा और इसके बाद जनता का प्रतिनिधि यह भी सार्वजनिक रूप से बतायें कि इतना धन खर्च हो चुका है और अभी इतना बाकि है और यह भी जनता से सुझाव मांगे कि बाकि धन को कहां पर खर्च करना है। यदि ऐसा हो जाये तो सहभागी लोकतंत्र का विचार सार्थक सिद्ध होगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहना एकदम से उचित होगा कि डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान को अन्तिमता एवं अकाट्यता के साथ कतई नहीं जोड़ा और न ही वह उस यथा–स्थिति के समर्थक थे, जिसमें जड़ता हो, जहां कोई पारस्परिक आदान–प्रदान न हो और सार्थक बदलाव न हो। उन्होंने समय तथा आदमी की आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान में समायोजन और परिवर्तन को उचित स्थान दिया है, परन्तु वह सब कुछ सभी नागरिको के हित में हो और सामान्य भलाई के मार्ग को अपनाता हो। बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर ने स्वयं संविधान में सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे के स्थायी रूप में निर्धारण का विरोध किया था। उनका कहना था कि जो परिवर्तनशील है, उसे स्थायी बनाने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। उन्होंने भावी पीढ़ी

की स्वतंत्रता को बरकरार बनाये रखा और चाहा कि वह अपनी स्थितियों के अनुकूल सामाजिक तथा आर्थिक ढांचे का निर्धारण करे परन्तु कमजोर, पद्दलित तथा पिछड़े वर्गों के प्रति न्याय का दमन करके नहीं। अतः संविधान समीक्षा अथवा सांवैधानिक व्यवस्था को बदलने के पूर्व, सम्बन्धित व्यक्तियों को अपने निहित–स्वर्थों तथा राजनीतिक दलों को संकिर्ण विचारों से ऊपर उठकर संपूर्ण राष्ट्र के हितों का ध्यान रखना चाहिए और यह कहना अल्पज्ञता होगी कि संविधान असफल रहा। अपितु संविधान तो अच्छा, सक्षम और समर्थ सिद्ध हुआ है और अपेक्षा करता है कि विद्यमान स्थितियों में उसके नीति–निदेशक सिद्धान्तों पर ईमानदारी से जन–प्रतिनिधियों द्वारा अमल किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *आर0 वेंकटरमण, 'गवर्नमेण्ट : वांटेड, ए नेशनल एक्जीक्यूटिव' (आलेख),द हिन्दुस्तान टाइम्स (अंग्रेजी), दिनांक – 07.05.1995.*
2. *वहीं।*
3. *डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर – रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड 13, (महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन, बाम्बे, 1994) पृष्ठ संख्या–51.*
4. *वहीं, पृ0सं0 52*
5. *वहीं, पृ0सं0 1210.*
6. *वहीं पृ0सं0 1215–1218.*
7. *स्वयं (डॉ0 पिताम्बरदास), डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का मानववाद, कला प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–2009.*
8. *डॉ0 डी0 आर0 जाटव : डॉ0 अम्बेडकर संविधान के मुख्य निर्माता, समता साहित्य सदन, जयपुर, राजस्थान, वर्ष–2015.*
9. *दैनिक जागरण, 11 मार्च, 2018, वाराणसी संस्करण, मुद्दा, आलेख शीर्षक–पारदर्शी तंत्र की कुंजीः सबका लोकतंत्र सबकी भागीदारी, पृष्ठ संख्या–13.*
10. *सी0 ए0 डी0 ऑफीशियल रिपोर्ट, खंड 10, 25 नवम्बर, 1949.*